Impact Factor : 7.550

ISSN 2349-364X

वेदाञ्जलि Vedanjali

अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्समीक्षित षाण्मासिकी शोधपत्रिका

(International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

वर्ष- ११ अंक- २१, भाग- ३ जनवरी-जून, २०२४

प्रधान सम्पादक
डॉ० रामकेश्वर तिवारी

सह सम्पादक
श्री प्रसून मिश्र

प्रकाशन : वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी

अनुक्रमणिका

- अयोध्या के नवाबों का सांस्कृतिक परम्पराओं में योगदान — 1–4
  अभिषेक कुमार यादव व डॉ0 लक्ष्मी गौतम
- याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित दान प्रतिगृहीतृत्व — 5–8
  डॉ0 अम्बरीष कुमार शास्त्री व अनीता देवी
- व्यावसायिक नैतिकता के प्रकार : एक अनुशीलन — 9–12
  डॉ0 कुमारी सुमन व आरती कुमारी
- दलित आत्मकथाओं में शैक्षिक जीवन — 13–15
  डॉ0 अनुराधा सिंह
- वैश्विक महामारी के सन्दर्भ में स्वास्थ्य, समाज, शिक्षा और संस्कृति — 16–19
  डॉ0 अतुल कुमार दुबे
- सोशल मीडिया : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — 20–24
  डॉ0 दिनेश कुमार तेली
- तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रसार में गुरू पद्म सम्भव की भूमिका — 25–27
  डॉ0 कामेश्वर प्रसाद
- वैदिक दर्शन में धर्म — 28–31
  डॉ0 कंवर सिंह
- लीलाधर जगूड़ी और सुदामा पाण्डेय धूमिल की कविताओं में अभिव्यक्ति कौशल : साम्य और वैषम्य — 32–35
  ममता शर्मा
- भारतीय ज्ञान परम्परा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 — 36–38
  डॉ0 निहारिका मिश्रा
- रामायणीय लोकसंस्कृति में नारी — 39–40
  डॉ0 नीता आर्या
- बौद्ध ध्यान पद्धति : विश्व धर्म के मूल आधार — 41–44
  डॉ0 प्रतिमा कुमारी
- बदलते परिवेश में ग्रामीण एवं शहरी जीवन — 45–47
  डॉ0 पूजा सिंह
- प्राचीन ज्ञान परम्परा एवं आधुनिक शिक्षा — 48–50
  डॉ0 राजेश कान्त रंजन
- समसामयिक परिस्थितियाँ और स्त्री–पुरूष सम्बन्ध — 51–51
  डॉ0 राखी सोनी
- शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य — 52–53
  डॉ0 रामेश्वरप्रसादः रणाकोटी
- रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी चिन्तन — 54–57
  डॉ0 रेनुका सरोज

वेदाञ्जलि, International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research
वर्ष-११, अंक-२१, भाग-३, जनवरी-जून, २०२४ | ISSN : 2349-364X | Impact Factor : 7.550

वैदिक दर्शन में धर्म

डॉ0 कंवर सिंह*

दर्शन शब्द 'दृश्' धातु से करण अर्थ में ल्युट् (अन) प्रत्यय के योग से 'दर्शन' शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है–'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय, उसे दर्शन कहते हैं। केवल चक्षु इन्द्रिय से देखना ही नहीं अपितु तत्त्व का साक्षात्कार भी दर्शन कहलाता है, जैसा कि 'आत्मदर्शन' आदि शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है। इसीलिए हमारे महर्षियों ने प्रकृति के मूल को जानना ही दर्शन माना है। दर्शन जीवन की व्याख्या है। साथ ही जीवन को सुखी बनाने का उपाय भी प्रस्तुत करता है। जीवन–सम्बन्धी किसी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान को इससे पृथक नहीं रखा जा सकता। भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य प्राणियों को त्रिविध दुःखों से शाश्वतिक मुक्ति दिलाना है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा वैदिक और अवैदिक दो भागों में विभक्त है। वैदिक के अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त स्वीकार किये जाते है। अवैदिक के अन्तर्गत चार्वाक, बौद्ध और जैन स्वीकार किये जाते है।

धर्म के स्वरूप के विषय में विद्वानों के अनेक मत प्राप्त होते हैं। उनमें से एक प्रसिद्ध मत यह है कि धर्म एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। इसका तात्पर्य है कि धर्म के दो स्वरूप माने गये हैं– प्रथम स्वरूप धर्म का दार्शनिक रूप और द्वितीय स्वरूप धर्म का पूजा–पाठ अथवा भक्ति है। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है, जो धृ धारणे धातु एवं मन् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ यह है कि जीवन का चाहे व्यक्ति रूप हो अथवा सामाजिक रूप, इन दोनों ही रूपों में जीवन के उन तत्त्वों एवं कारको के धारण करने से व्यक्ति एवं समाज का निर्माण होता है, जिनके धारण करने से समाज तथा व्यक्ति श्रेष्ठ एवं महान् कहलाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि धर्म शब्द का अनुवाद अन्य भाषा में करना सम्भव सा प्रतीत नहीं होता है। हम यदि अंग्रेजी भाषा में देखे तो धर्म शब्द का अनुवाद Religion (रिलीजन) के रूप में मिलता है। रिलीजन शब्द का अर्थ सम्प्रदाय के रूप में मिलता है, जबकि धर्म शब्द का अर्थ केवल सम्प्रदाय के रूप में नहीं मिलता है। अभिप्राय यह है कि धर्म शब्द व्यापक है।

भारतवर्ष की संस्कृति का प्राण–तत्त्व धर्म है। सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद– **"तानि धर्माणि प्रथमानि"**[1] से अद्यावधि धर्म की व्याख्या परिवर्तित होती रही है। आरण्यक साहित्य में धर्म को श्रेष्ठ माना गया है– **"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्, तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।"**[2] उपनिषद् साहित्य में भी धर्म की प्रधानता स्वीकार की गयी है। ईशावास्योपनिषद् में सत्य धर्म को बताते हुए उसके माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति होना हमारे महर्षियों ने बताया है– **हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।**[3]

भारतवर्ष के प्रथम समाजशास्त्री मनु ने धर्म का लक्षण अपने ग्रन्थ 'मनुस्मृति' में दिया है–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[4]

मनु ने धर्म का अन्तर्भाव– 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' में माना है। अर्थात् आत्मा के अनुकूल आचरण करना चाहिए और दूसरो के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए, यहाँ पर आत्मा का अर्थ है–किसी भी परिस्थिति के सम्मुख आने पर जो अन्तर्ज्ञान (Intrection) उत्पन्न होता है, उसके अनुसार आचरण करना ही धर्म कहलाता है। इसी प्रकार दूसरे के प्रतिकूल आचरण न करना ही धर्म है। इसे धर्म का साक्षात् लक्षण माना है–**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।[5]

वैशेषिक दर्शन– भारतीय षड्दर्शनों में वैशेषिक और मीमांसादर्शन का प्रारम्भ धर्म के व्याख्यान से होता है। वैशेषिक दर्शन के आदि प्रवर्तक महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन का प्रारम्भ धर्म की व्याख्या से प्रारम्भ किया है– **अथातो धर्म व्याख्यास्यामः**[6] दूसरे सूत्र में 'धर्म' का लक्षण स्पष्ट करते हुए कहते है कि धर्म वह है जिससे

*सह आचार्य, संस्कृत विभाग, श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

अभ्युदय अर्थात् लौकिक उन्नति और निःश्रेयस् अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है– **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**[7]

धर्म के लक्षण के समर्थन में कहा है कि वेद में इस धर्म का व्याख्यान किया गया है और वेद स्वतः प्रमाण है। वेद में धर्म के स्वरूप यथावत् प्रतिपादन किया गया है इसलिए उसकी सिद्धि स्वतः प्रमाण वेद से होती है– **तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।**[8] जैसा कि **'ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं शमो धर्मश्च कर्म च।'**[9] इत्यादि मंत्रो में धर्म का प्रतिपादन किया है और इसी आशय से **''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति''**[10] इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में भी वर्णन किया है कि पुण्य कर्मों से उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है और वह पुण्यकर्म ही धर्म है। वेद प्रतिपाद्य अर्थ का नाम धर्म है–

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।[11]

धर्म के जिज्ञासु पुरुषों के लिए वेद ही स्वतः प्रमाण है और वेद प्रमाणक धर्म ही आर्यमात्र का नित्य कर्त्तव्य है, क्योंकि उसके यथाविधि करने से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है–

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्य्यादतन्द्रितः। तद्धि कुर्वन् यथाशक्त्या प्राप्नोति परमां गतिम्।।[12]

वेद को प्रमाण के रूप में इसलिए स्वीकार किया है कि वेद का ज्ञान ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। जिसे हमारे महर्षियों ने स्वयं साक्षात्कार और अनुभव करके अन्य जन तक पहुँचाया है। इसलिए उसे स्वतः प्रमाण्य के रूप में वैशेषिक दर्शन ने स्वीकार किया है।

किन पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करते हुए कहा है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के साधर्म्य तथा वैधर्म्य द्वारा अनेक धर्म विशेष से जो तत्त्व ज्ञान प्राप्त होता है, उससे निःश्रेयस की प्राप्ति होती है–

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्म सामान्यविशेषसमवायानां।
पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानानिः श्रेयसस्।।[13]

वैशेषिक दर्शन के चतुर्थ सूत्र में 'धर्म विशेष प्रसूतात्' शब्द का विशिष्ट अर्थ अर्थात् तकनीकी अर्थ प्रतीत होता है। इस अर्थ को हम वैज्ञानिक अर्थ भी कह सकते है। जो द्रव्य, गुण, कर्म और सामान्य आदि का धर्म विशेष के साक्षात् होने पर मोक्ष की प्राप्ति कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि धर्म शब्द का अर्थ केवल कर्मों के अर्थात् यज्ञों के अनुष्ठान मात्र से नहीं है। इसका अर्थ यहाँ पर इन द्रव्य, गुण, कर्म और सामान्य आदि जो पदार्थ है उनके धर्मों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना यही धर्म का यहाँ विशेष अर्थ प्रतीत होता है। इसका उद्देश्य है कि व्यक्ति पदार्थों के धर्म अर्थात् वैज्ञानिक रहस्य को जानकर जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास करे। इसलिए वैशेषिक दर्शन में पदार्थों के धर्म का व्याख्यान करते हुए स्पष्ट किया है कि धर्म–धर्मी सम्बन्ध से ही वैज्ञानिक उन्नति की जा सकती है। इस वैज्ञानिक अर्थात् मोक्ष का तत्त्व ज्ञान प्राप्त करना धर्म है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जिस आचरण से लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति होती है, उसे धर्म कहते हैं।

जबकि ब्रह्मसूत्र में कहा गया है– **''फलमत उपपत्तेः।''**[14] महाभारत में धर्म के विषय में कहा गया है– **धारणाद्धर्मः इत्याहुः।**[15] जो धारण संयुक्त होता है वही निश्चय से धर्म है– **यः स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।**[16] लोक व्यवहार को अच्छी तरह चलाना ही धर्म का प्रयोजन माना गया है।[17] न्यायभाष्य में भी उल्लेख प्राप्त होता है– **लोक व्यवहारस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः।**[18]

मीमांसा–दर्शन– 'अथातो धर्मजिज्ञासा'[19] सूत्र से जिस धर्म की जिज्ञासा महर्षि जैमिनि करते है वह **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'**[20] है। मीमांसादर्शन में धर्म का अर्थ धर्म–धर्मी रूप में नहीं किया गया है। यहाँ स्पष्ट संकेत किया गया है कि वेदाध्ययन के अनन्तर धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए क्योंकि धर्म के दार्शनिक स्वरूप को समझने के लिए वेदों में जो धर्म का स्वरूप बताया गया उसको समझना परमावश्यक है। मीमांसा दर्शन में धर्म का लक्षण किया है कि जो अच्छे कर्म करने की ओर प्रेरित करता है वह धर्म है। मीमांसा दर्शन धर्म को वेद द्वारा प्रवर्तित स्वीकार करता है। यह धर्म की ज्ञान परक व्याख्या प्रतीत होती है जहाँ शिष्य जिज्ञासा सूचित हो रही है।

धर्म के विषय में विप्रतिपत्तिमूलक जिन संशयो की चर्चा की गयी है उन के प्रसङ्ग में ज्ञातव्य है कि धर्म के स्वरूपादि के प्रसङ्ग में प्रथमतः दो विप्रतिपत्तियाँ की जाती है– 1. किं प्रमाणो धर्मः? 2. किं स्वरूपो धर्मः?

अर्थात् धर्म की सत्ता में प्रमाण क्या है? एवं धर्म का स्वरूप (लक्षण) क्या है? महर्षि जैमिनि ने अपने सूत्रग्रन्थ के प्रथमाध्याय के प्रथम पाद के द्वारा सबसे पहले विप्रतिपन्न इन्हीं पक्षों में निर्णय किया है। मीमांसा दर्शन का प्रतिपाद्य विषय धर्म है। धर्मज्ञान ही इस दर्शन का प्रयोजन है– **यदा हि धर्मजिज्ञासा कर्तव्यैत्युक्तदा शास्त्रमारभ्यमाणं दृश्यते तदा नूनमिदं शास्त्रं धर्मज्ञानप्रयोजनमित्यवगम्यते।**[1]

कुमारिल भट्ट ने जैमिनि के 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इस सूत्र को मीमांसा दर्शन के प्रयोजनभूत धर्म नामक विषय व्याख्या करने के लिए रचित माना है–

अथातो धर्मजिज्ञासासूत्रमाद्यमिदं कृतम्।
धर्माख्यं विषयं वक्तुमीमांसायाः प्रयोजनम्।।[2]

जैमिनि मुनि ने जो धर्म का लक्षण दिया है– **चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**। इस सूत्र में धर्म का लक्षण करते हुए उसके स्त्रोत पर प्रकाश दिया गया है–चोदना अर्थात् वेदगत विधिवाक्य ही धर्म के स्त्रोत है। धर्म का मुख्य लक्षण है अर्थ (निःश्रेयस से पुरुष को संयुक्त करने वाला कार्य) धर्म। इस अर्थ के विशेषण के रूप में 'चोदनालक्षित' का प्रयोग हुआ है। तदनुसार केवल उन्हीं कल्याणकर क्रियाकलापों को धर्म कहेंगे जो वेदविधियों से लक्षित (निर्दिष्ट) हो। क्रिया के प्रवर्तक वेदवाक्यों की अपरिमेय शक्ति का प्रकाशन शबर ने किया है–अतीत, वर्तमान, भविष्य, सूक्ष्म, व्यवहित तथा विप्रकृष्ट इन सभी पदार्थों का बोध कराने की क्षमता उनमें है। कोई दूसरा साधन (प्रमाण) ऐसा नहीं कर सकता। इन्द्रिय (प्रत्यक्ष) में तो यह शक्ति नहीं ही है।[3] साथ ही अनुमान, उपमान तथा अर्थापत्ति आदि प्रमाण भी असमर्थ है क्योंकि ये किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष पर ही आश्रित है– **प्रत्यक्षपूर्वकत्वाच्चानुमानोपमानार्थापत्तीनामप्यकारणत्वम्।**[4]

धर्म का प्रयोग यहाँ जैमिनि ने पुण्य के अर्थ में नहीं किया है अपितु पुण्यजनक कर्त्तव्यमात्र इसका अर्थ है। इससे तीन निष्कर्ष निकलते हैं–1. पुण्यजनक कार्य जो वेद में निर्दिष्ट है, धर्म है। 2. धर्मज्ञान का साधन एकमात्र वेद है। 3. वेद प्रमाण है।[5]

लौगाक्षिभास्कर ने धर्म का स्वरूप प्रदर्शित करते हुये लिखा है– **'यागादिरेव धर्मः।'**[6] अर्थात् 'याग आदि क्रिया' ही धर्म है और **'वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः'**[7] यह धर्म का लक्षण है। कुमारिल ने इसी संदर्भ में 'श्रेयस' तथा धर्म का सम्बन्ध दिखलाया है–

श्रेयो हि पुरुषप्रीतिः सा द्रव्यगुणकर्मभिः।
चोदनालक्षणैः साध्या तस्मात्तेष्वेव धर्मता।।[8]

आचार्य लौगाक्षिभास्कर के धर्मलक्षण और जैमिनि मुनि के धर्म–लक्षण में विरोध नहीं है क्योंकि जैमिनि–सूत्र में 'चोदना' शब्द पूरे वेद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, न कि केवल विधि अर्थ में। वेदों का तात्पर्य धर्म में होने के कारण समग्र वेद धर्म का ही प्रतिपादक है।

शांकर–दर्शन (अद्वैतवेदान्त)– शङ्कराचार्य की दृष्टि में धर्म कोई सिद्धान्त अथवा अनुष्ठान नहीं है अपितु जीवन तथा अनुभव है। इसका प्रारम्भ आत्मा की अन्तःकरण सम्बन्धी भावना से होता है और इसके अनन्त बन जाने में जाकर अन्त होता है। जीवन का लक्ष्य है साक्षात्कार अथवा यथार्थसत्ता का अन्तर्ज्ञान। 'यथार्थ–भक्ति' अपने सत्य स्वरूप को खोज निकालना ही है– **स्वरूपानुसन्धानं भक्तिरिति अभिधीयते।**[9]

शङ्कर धर्म–परायण ऋषियों के वाक्यों का उद्धरण देते है जो जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का व्याख्यान करते है। जैसे–**''यथार्थ में तू मैं हूँ, हे पवित्र ईश्वर, और जो मैं हूँ वह तू है।''त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते, अहं वै त्वमसि भगवो देवते।**[10]

धर्म का प्रतिपादन करने वाले प्रत्येक दर्शन को इस प्रकार के कथनो का कुछ न कुछ समाधान देना ही होता है, यथा **'अहं ब्रह्मास्मि'**[11] (मैं ब्रह्म हूँ।), **'तत्त्वमसि'**[12] अर्थात् वह तू हैं। शंकर इन सबका समाधान यह कहकर करते है कि धार्मिक चैतन्य अपने समस्त भेदों के साथ लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर स्वतः समाप्त हो जाता है। एक 'साकार ईश्वर' का कुछ अर्थ क्रियात्मक धार्मिक चैतन्य के लिए तो हो सकता है किन्तु उच्चतम साक्षात्कार के लिए नहीं।

शंकर हमारे सक्षम उस सर्वग्राही तथा सहिष्णु प्रकृति हिन्दू धर्म के एक महानतम व्याख्याकार के रूप में प्रकट हुए, जो सदा ही विजातीय मतों को अपने अन्दर समाविष्ट कर लेने के लिए उद्यत रहा है। सहिष्णुता धर्म के एक अनिवार्य अंग के रूप में थी।

आचार्य शंकर के अनुसार, हिन्दू धर्म अपने क्षेत्र के अन्दर समस्त विचारों के भिन्न–भिन्न रुपों तथा मानसिक प्रवृत्तियों के लिए स्थान रखता है। उन्हें 'षट्मतस्थापनाचार्य' की उपाधि दी जाती है, अर्थात वे एक ऐसे आचार्य थे, जिन्होने छः मतो की स्थापना की–शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गणपत्य और कापालिक मत।

आध्यात्मिक गहराई तथा तार्किक शक्ति में शंकर का दर्शन अद्वितीय है। उन्होंने सत्यधर्म के ऊपर बल दिया जिसका मूलाधार आध्यात्मिक आन्तरिकता में है। समस्त धर्मों का उद्दिष्ट सत्य आत्मा है, और जब तक हम यथार्थसत्ता के साथ अपनी आत्मा के एकत्व को नहीं पहचान लेते, जो इन सब अपूर्ण वस्तुओं से अतीत है, तब तक हम संसार चक्र में घूमते रहेंगे। अपने दार्शनिक दृष्टिकोण से वे कहते है कि यद्यपि निरपेक्ष परब्रह्म का दर्शन अनेक प्रकार से होता है किन्तु उन सबकी पृष्ठभूमि में यथार्थसत्ता वही एक है।[33]

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते है कि 'धर्म' पुरुषार्थ का मेरूदण्ड है। धर्म, अर्थ और काम का नियामक तथा मोक्ष का प्रदाता है। धर्म–सम्मत अर्थ और धर्म सम्मत काम ही निष्काम कर्मयोग है, जो परमपद मोक्ष की आधारशिला है। धर्म उस बहुदलीय पुष्प के सदृश्य है, जो अर्थ और कामरूपी पंखुड़ियों को सुनियोजित करके मोक्ष–सौरभ बिखेरता है। धर्म इस लोक का नियमन करते हुए परलोक के साथ मन को जोड़ता है। धर्म पशुत्व और देवत्व का संगम है। धर्म से आशा का संचार होता है और निराशा का नाश। अल्बर्ट आइन्सटीन ने भी कहा था, "Science without Religion Lame. Religion without Science Blind"

धर्म शब्द इतना व्यापक और गूढ़ है कि इसको शब्दों में बाँधना कठिन ही नहीं असम्भव कार्य है। यद्यपि सभी भारतीय दर्शनों में धर्म के स्वरूप का न्यून या अधिक वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु भारतीय षड्दर्शनों में वैशेषिक और मीमांसादर्शन का प्रारम्भ धर्म के व्याख्यान और जिज्ञासा से होता है। यद्यपि सभी भारतीय दर्शन ने धर्म के स्वरूप और परिभाषा तथा लक्षण का वर्णन अपने–अपने मत के अनुसार किया है। सभी के लक्षण परिभाषा तथा स्वरूप में छोटा बहुत अन्तर है परन्तु सभी का मूल एक ही है।

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद, 10/90/16।
2. तैत्तिरीय आरण्यक, 10/63।
3. ईशावास्योपनिषद्, 1/15।
4. मनुस्मृति, 6/91।
5. मनुस्मृति, 2/11।
6. वैशेषिक सूत्र, 1/1/1।
7. वैशेषिक सूत्र, 1/1/2।
8. वैशेषिक सूत्र, 1/1/3।
9. अथर्ववेद, 11/4/17।
10. बृहदारण्यकोपनिषद्, 5/2/13।
11. मनुस्मृति, 2/12।
12. मनुस्मृति, 4/14।
13. वैशेषिक सूत्र, 1/1/4।
14. ब्रह्मसूत्र, 3/2/38।
15. महाभारत, शान्तिपर्व, 109/11।
16. वही।
17. महाभारत, शान्तिपर्व, 259/4।
18. न्यायभाष्य, 4/1/62।
19. मीमांसा सूत्र, 1/1/1।
20. मीमांसा सूत्र, 1/1/2।
21. शास्त्र दीपिका, 1/1/1/1।
22. मीमांसाश्लोकवार्तिक, श्लोक संख्या–11।
23. मीमांसादर्शनम् (तर्कपाद:), भूमिका, पृ0सं0–30।
24. शाबरभाष्य, 1/1/4।
25. मीमांसादर्शनम् (तर्कपाद:), भूमिका पृ0सं0–30।
26. अर्थसङ्ग्रह, विभाग–4, प्रस्तावना पृ0सं0–6।
27. वही।
28. श्लोकवार्तिक, 2/191।
29. विवेकचूडामणि, पृष्ठ सं0–31।
30. शांकरभाष्य, 4:1, 3।
31. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/4/10।
32. छान्दोग्योपनिषद्, 6/8/7।
33. शांकरभाष्य, 1:1, 20।